Universe Journal of Education & Humanities ISSN 2348-3067
Volume-5, No. II, Aug.-2018, pp.Hin.01-06

न्याय दर्शन के प्रमाणादि तत्व एवं पदार्थ व्यवस्था का आयुर्वेद में उपयोग एक अध्ययन

श्री दीपक उदय (शोधार्थी), दर्शनशास्त्र विभाग,
सम्राट पृथ्वीराज चौहान राजकीय महाविद्यालय, अजमेर राजस्थान भारत।
डॉ.राजकुमारी जैन (शोध निर्देशिका)

आयुर्वेद अथर्ववेद का उपवेद एवं विश्व का आदि चिकित्सा विज्ञान हैं। पदार्थ विज्ञान का उपयोग आयुर्वेद शास्त्र में भी आवश्यक रूप से हुआ है। आयुर्वेद पृथक् दर्शन भी माना गया है। दार्शनिक तत्त्वों की चिकित्सा में उपयोगिता की दृष्टि से आयुर्वेद में स्वतंत्र व्याख्याएं भी की है। न्याय के 16 पदार्थविषयक सिद्धांत, प्रमेयादि एवं चतुर्विध प्रमाण, आत्मा, पुनर्जन्म, मन, बुद्धि, कर्मफल आदि का वर्णन आयुर्वेद में भी प्राप्त होता है।[1] 16 पदार्थों में बताई गई प्रमाण एवं प्रमेय की विशेषता को आयुर्वेद ने भी स्वीकार किया है। आयुर्वेद एवं दर्शन ग्रन्थों का उद्देश्य समान होने के कारण दोनों में ही पदार्थ आदि प्रारम्भिक विषयों का वर्णन किया गया है। न्याय दर्शन ग्रन्थ तत्त्व ज्ञान की प्राप्ति तक का मार्गदर्शन करते है दूसरी तरफ आयुर्वेद भी प्राणियों को तत्त्व ज्ञान प्राप्ति हेतु एवं रोग या दुःख मुक्ति हेतु स्वस्थ रहने का उपदेश करता है।

मुख्य शब्द– दुःख, आयुर्वेदीय चिकित्सा, आयुर्वेद सम्मत प्रमाण, चतुर्विध प्रमाण,

आयुर्वेद के अनुसार दुःख का नाम ही रोग हैं।[2] पदार्थ विज्ञान की आयुर्वेद में विशेष उपयोगिता देखी जाती हैं। जिस निमित्त को लक्ष्य करके कोई कार्य किया जाता है उसे प्रयोजन कहते हैं।[3] आयुर्वेद शास्त्र का प्रयोजन मनुष्य के स्वास्थ की रक्षा और रोगी के रोग का निवारण है।[4] आयुर्वेद में बताये गए मूलभूत सिद्धांत पदार्थ ज्ञान पर आधारित हैं अतः इन मूलभूत सिद्धांतों को किस रूप में एवं कहा उपयोग करना है इसे जानने हेतु भी पदार्थ विज्ञान का अध्ययन आवश्यक होता हैं। सभी पदार्थ शास्त्र पर आधारित होने से आयुर्वेदीय चिकित्सा में पदार्थ ज्ञान का महत्व हैं। आचार्य चरक के अनुसार शरीर आहार से उत्पन्न होता है।[5] सामान्य जीवन में शरीर को स्वस्थ रखने हेतु अनेक द्रव्यों का प्रयोग किया जाता है एवं अनेक पदार्थों का परिहार किया जाता है। इन वस्तुओं का ज्ञान पूर्ण रूप से पदार्थ शास्त्र के नियमों पर आधारित होने से भी पदार्थ विज्ञान की उपयोगिता देखी जाती हैं।

पदार्थ विज्ञान का प्रत्येक अध्याय आयुर्वेद में उपयोगी है। रोगी, रोग परीक्षा हेतु एवं रोग ज्ञान प्राप्ति हेतु प्रत्यक्ष, अनुमान, आप्तोपदेश, युक्ति आदि की पूर्ण सहायता ली जाती है। संशय से निर्णय तक पहुचने हेतु और अन्य विषयों के गुण प्रयोग की जानकारी प्राप्त करने हेतु पदार्थ विज्ञान का आयुर्वेद में विशेष उपयोग हैं।[6]

तर्क भाषा में 'प्रमा करणं प्रमाणम्'[9] द्वारा अज्ञात विषयक यथार्थ ज्ञान को प्रमाण कहा है। अतः सत्य ज्ञान प्राप्त कराने वाला साधन प्रमाण है। आयुर्वेद के आचार्यों ने प्रमाण पद का उल्लेख न करते हुए परीक्षा शब्द लिखा है। अतः प्रत्यक्ष अनुमान शब्दादि द्वारा विषयों की परीक्षा का ही विवरण दिया है।

"द्विविधमेव खलु सर्वं सच्चासच्च, तस्य चतुर्विधा परीक्षा आप्तोपदेशः प्रत्यक्षम् अनुमानं चुक्तिश्चेति"।[10]

आर्युवेद शास्त्र में प्रमाण सन्दर्भ में परीक्षा का व्यवहार

कुछ आचार्य साधन को प्रमाण मानते है, कुछ साध्य को प्रमाण मानते हैं। इन दोनों ही मतों का विषय विचारणीय है क्योंकि साधन–वादियों के अनुसार इन्द्रियों को प्रमाण माना जायेगा तो इन्द्रियों में विकृति आ जाने पर सौ वर्ष तक देखा हुआ वृद्ध व्यक्ति का ज्ञान यथार्थानुभव प्रमाण रूप में ग्रहण नहीं हो सकेगा। इसी प्रकार साध्यवादियों के अनुसार यथार्थानुभव को ही प्रमाण मानने में यह आपत्ति है कि यथार्थानुभव को प्रमाण मानेंगे, तो प्रमा किसे माना जायेगा ? क्योंकि प्रमेयसिद्धि प्रमाणों के अधीन बताई गई हैं।

इसलिए यह दर्शन शास्त्रों में विवाद का ही विषय है इसी से बचने के लिए आचार्य चरक एवं टीकाकारों ने प्रत्यक्ष अनुमानादि के लिए प्रमाण शब्द का उल्लेख नही किया क्योंकि प्रमाण शब्द मापने के अर्थ में निष्पन्न होता है। अतः इन्होंने प्रत्यक्ष आदि के लिए परीक्षा शब्द का उल्लेख किया। परीक्षा शब्द **"परितः ईक्षा। ईक्षा पुनरीक्षणमवधारणं निश्चय इति।"**[14]

अर्थात् किसी पदार्थ के विषय में सर्वतोभावेन निश्चय करना परीक्षा है। इसे ईक्षण, धारण आदि भी कहा

Scanned by CamScanner

जाता हैं। 'ईक्षु सन्दर्शने' धातु से इसकी व्युत्पत्ति करने पर शरीर इन्द्रियों के अतिरिक्त अन्य किसी उपकरण से यह कर्म सम्भव नही हो सकता। अतः परीक्षा शब्द का प्रयोग ही आयुर्वेद के आचार्यो को उचित प्रतीत हुआ।[15]

किसी भी वैज्ञानिक विषय के सत्यासत्य का ज्ञान परीक्षण के आधार पर ही किया जाता है। दर्शनों के विषय वर्णन से पूर्व शास्त्र की त्रिविध प्रवृत्ति का विशेष रूप से उल्लेख किया गया है। त्रिविध प्रवृत्ति में प्रथम उद्देश्य (Enomeration) द्वितीय लक्षण (Defination) एवं तृतीय परीक्षा (Examination) हैं। इनमें पदार्थो के भेद, नाम एवं लक्षण का विश्लेषण विवेचन एवं निर्दुष्ट लक्षणादि की प्रामाणिकता का आधार परीक्षा ही है। आयुर्वेद में प्रमुख रूप से प्रत्यक्ष और अनुमान दो ही प्रमाणो का प्रयोग किया जाता है किन्तु रोग परीक्षा में आप्तोपदेश के साथ त्रिविध प्रमाणों का एवं सूत्र स्थान में प्रसंगवश युक्ति प्रमाण को भी स्वीकार करते हुए इनकी भी उपयोगिता का विवरण दिया है। चरक एवं सुश्रुत दोनों सहिताओं में त्रिविध प्रमाणों, प्रत्यक्ष, अनुमान ओर आप्तोपदेश (शब्द) का विशेष प्रयोग किया गया है। दर्शनों में मान्य दशविध प्रमाणों का चतुर्विध प्रमाणों में अन्तर्भाव करते हुए चार की ही विशेषता का प्रतिपादन किया हैं।

आयुर्वेद सम्मत प्रमाण

(1) चरकीय द्विविध प्रमाणः–आयुर्वेद में तत्त्व एवं पदार्थो का दार्शनिक दृष्टि से विवेचन करते हुए लौकिक पक्ष में भी इनका महत्त्व प्रदर्शित किया है। सृष्टि उत्पत्ति से प्रलय तक स्थित रहने वाले पदार्थ का सूक्ष्मतम दृष्टि से निरूपण भी किया हैं। प्रयोजन की सिद्धि में प्रत्यक्ष प्रमाण को प्रमुख माना गया है किन्तु अन्य सिद्धांतों की सिद्धि हेतू अनुमान को भी ग्रहण किया है। इन दोनों प्रमाणों पर ही निदान एवं चिकित्सा आधारित है जिसके लिए विमान स्थान में लिखा है **'द्विविधा तु खलु परीक्षा ज्ञानवतां प्रत्यक्षमनुमानञ्च, एतद्धि द्वयमुपदेशश्च परीक्षा स्यात्'**[16]। अतः रोग ज्ञान प्रधान रूप से प्रत्यक्ष एवं अनुमान इन दो प्रमाणों द्वारा ही किया जाता हैं।[17]

(2) चरकीय त्रिविध प्रमाण :–सभी प्रकार के रोग ज्ञान हेतु चरक ने तीन प्रमाणों का उल्लेख किया। **"त्रिविधं खलु रोगविशेषविज्ञानं भवति। तद् यथा आप्तोपदेशः प्रत्यक्षम् अनुमानञ्चेति।"**[18] जहां दो प्रमाणों का विशेष उल्लेख किया है वहां **'सहाप्तोपदेशेन त्रिविधमपि'** से आप्तोपदेश का भी वर्णन किया गया है। स्थूल जगत् की सिद्धि में आप्तोपदेशे को गौण रूप मे स्वीकार किया है किन्तु अव्यक्तादि सूक्ष्म भावों के विशेष ज्ञान हेतु प्रत्यक्ष एवं अनुमान के अतिरिक्त प्रधान रूप से आप्तोपदेश को स्वीकार किया है। सांख्य–योग और नैयायिकों के अनुसार आत्यन्तिक दुःख निवृत्ति एवं मोक्ष प्राप्ति हेतु त्रिविध प्रमाणों के प्रयोग का आचार्य चरक ने भी समर्थन करते हुए ही इन प्रमाणों का प्रमेय ज्ञान में प्रयोग उचित समझा हैं।

(3) चतुर्विध प्रमाण चरक द्वाराः– भिन्न–भिन्न मतान्तरों से आयुर्वेद ने सार रूप लेकर न्याय तथा सांख्य प्रमाणों को ही स्वीकार किया है। महर्षि चरक ने चार प्रमाणों का वर्णन किया है **'आप्तोपदेश, प्रत्यक्ष, अनुमव, युक्तिश्चेति'**।[19] इनके अनुसार सत्य और असत्य को जानने के लिए इन चार प्रमाणों का क्रम से सबसे अधिक प्रशस्त और ग्राह्य है। यथा आप्तोपदेश, प्रत्यक्ष, अनुमान और युक्ति सत्यासत्य को जानने के लिए चार प्रकार की परीक्षाएँ हैं। पृथक–पृथक् स्थलों पर प्रमाण भेद को दष्टिगोचर करना, प्रयोजनों की भिन्नता के कारण ही होता है। प्रत्यक्षवादी नास्तिकों का खण्डन करते हुए एवं अपना पक्ष रोगारोग्य परीक्षा में स्थापित करते हुए ही इन चार प्रमाणों का चरक में विवेचन किया गया प्रतीत होता हैं। सुश्रुत द्वारा चतुर्विध प्रमाणों में आप्तोपदेश व युक्ति के स्थान पर शब्द और उपमान नामक प्रमाणों को स्वीकार किया हैं। चरक विमान स्थान में उपमान और ऐतिह्य इन दो प्रमाणों को आप्तोपदेश व युक्ति के अभाव में वाद की सिद्धि के लिए स्वीकार किया गया प्रतीत होता हैं।

प्रत्यक्ष प्रमाण निरूपण

इन्द्रियार्थ सन्निकर्ष से उत्पन्न होने वाला ज्ञान प्रत्यक्ष है।[21] यह प्रमाण दो रूपों में प्रदर्शित होता है– 1) सविकल्पक और 2) निर्विकल्पक। सविकल्पक ज्ञान दो प्रकार का होता है – 1) लौंकिक और 2) अलौकिक। इनको सामान्य लक्षण, ज्ञान लक्षण तथा योगज रूप में भी व्यक्त किया गया है।

ज्ञानेन्द्रियों एवं उनके विषय के सन्निकर्ष से उत्पन्न हुआ, भ्रमरहित ज्ञान प्रत्यक्ष कहलाता है।' **प्रत्यक्षं तु खलु तद्यत् स्वयमिन्द्रियैर्मनसा चोपलभ्यते।'** [22] अर्थात् जिस वस्तु का ज्ञान इन्द्रियों एवं मन के द्वारा किया जाता है उसे प्रत्यक्ष कहा जाता है।" **आत्मेन्द्रियमनोऽर्थानां सन्निकवात् प्रवर्तते। व्यक्ता तदात्वे या बुद्धिः प्रत्यक्षं सा निरूच्यते।"**[23] अर्थात् आत्मा, इन्द्रिय, मन और विषयों के सन्निकर्ष होने पर जो निश्चयात्मक बुद्धि उत्पन्न होती है उसे प्रत्यक्ष कहा जाता है।

आयुर्वेद में अनेक संहिताकारों एवं टीकाकारों ने प्रत्यक्ष की उपयोगिता का अपनी दृष्टि से मूल्यांकन करते हुए लक्षण का विवचेन किया है जिनमें चरक एवं उसके टीकाकारों ने प्रत्यक्ष ज्ञान में इन्द्रियार्थ सन्निकर्ष के साथ मन को भी ग्रहण किया है तथा

Scanned by CamScanner

कहीं–कहीं मनरहित केवलमात्र पंचेन्द्रियो से ही लक्षण स्पष्ट किया है जिसका विवरण विषय को समयानुसार ग्रहण करने के अनुसार ही हुआ प्रतीत होता है।[24]

चरक द्वारा दिए गये लक्षण में आत्मा, मन, इन्द्रियां और विषयों के सन्निकर्ष से उत्पन्न हुई निश्चयात्मक बुद्धि को प्रत्यक्ष कहा गया है।[25] इससे प्रत्यक्ष ज्ञान के क्रम का पूर्ण विवरण प्राप्त होता है अर्थात् ज्ञान का अधिकरण आत्मा है उसके प्रेरित मन, मन द्वारा निर्देशित इन्द्रियां तथा उनसे ज्ञात इन्द्रियार्थ विषय होते है। चरक में 'व्यक्त' शब्द से निश्चयात्मक ज्ञान को ही प्रत्यक्ष प्रमाण मानने का निर्देश है।[26]

'आचार्य डल्हण' ने विषयों के साक्षात्कारि ज्ञान को प्रत्यक्ष कहा है। यहां साक्षात्कारि शब्द सभी दृष्टि से परिपूर्ण है। इससे इन्द्रियों एवं मनआदि का सन्निकर्ष स्पष्ट हो जाता है।

आयुर्वेद मे प्रत्यक्ष प्रमाण की उपयोगिता का वर्णन

यद्यपि आयुर्वेद मे सभी प्रमाणों का यथासम्भव उपयोग किया है तथापि चिकित्सा का अधिक भाग प्रत्यक्ष पर आधारित होने से प्रत्यक्ष प्रमाण का विशेष उपयोग देखा जाता है। रोगी एवं रोग परीक्षा हेतु चरक आदि संहिताओं में प्रत्यक्ष का स्थान–स्थान पर निर्देश किया है। अनुमान एवं प्राप्त वचनों को स्मरण करके भी प्रत्यक्ष द्वारा ही उनकी पुष्टि हो पाती है। सुश्रुत में भी व्रणादि परीक्षा, अरिष्टादि लक्षणों के ज्ञान हेतु प्रत्यक्ष की उपयोगिता का उल्लेख किया है। चरक विमान स्थान के रोग विशेष विज्ञानीय अध्याय में प्रमाणों द्वारा परीक्षा का विवरण देते हुए लिखा है–

"प्रत्यक्षतस्तु खलु रोगतत्त्वं बुभुत्सु..... परीक्षणमुक्तम्"।[27]

अर्थात् प्रत्यक्ष द्वारा रोग परीक्षा करने वाले को चाहिए कि सभी इन्द्रियों से रस ज्ञान को छोड़कर (क्योंकि यह अनुमान का विषय होने से) रोगी के सभी इन्द्रियार्थों की परीक्षा करें।[28]

इनमें श्रोत्र द्वाराः– आंत्रकूजन, सन्धि एवं अस्थि पर्वों का फूटना व स्वर भेद की परीक्षा करें। आधुनिक दृष्टि से हृदय एवं फुफ्फुस की ध्वनि परीक्षा भी इसी के अन्तर्गत आती है।

चक्षु द्वारा– वर्णन आकार, शरीर प्रमाण, छाया आदि अन्य स्वरूपवान् विषयों की परीक्षा करें।

घ्राण द्वारा– रोगी के शरीर की सम्पूर्ण स्वाभाविक एवं विकृत गन्धों का ज्ञान करें।

स्पर्श द्वारा– प्रकृति एवं विकृति से युक्त स्पर्श की परीक्षा हाथ से करनी चाहिए।

इस प्रकार प्रत्येक रोग एवं स्वास्थ्य प्रकरण में शरीर भावों के प्राकृतिक एवं वैकृतिक लक्षणों का ज्ञानेन्द्रिय द्वारा प्रत्यक्ष ज्ञान प्राप्त करने पर बल दिया है। अतः रोग परीक्षा में प्रत्यक्ष की प्रधानता देखी जाती है। जहां प्रत्यक्ष में अतिसामीप्यादि दोष बताए है, वहीं अनुमान एवं आप्त प्रमाण की सहायता लेते हुए भी निर्णय तो प्रत्यक्ष चिन्हों द्वारा ही किया जा सकता है जैसे शरीर पर चलने वाली पिपिलिकाओं को चलते देखकर माधुर्य का अनुमान किया जाता है तथापि प्रत्यक्ष लक्षण तो पिपिलका का चलना है अतः प्रत्यक्ष सभी प्रमाणों का आधार है।[29]

आयुर्वेद में अनुमान का सर्वाधिक प्रयोग

आयुर्वेद में प्रमुख चार प्रमाणों का यथावश्यक उपयोग किया गया है। रोगी–रोग परीक्षा प्रकरण में जहां दर्शन, स्पर्श, प्रश्न आदि द्वारा रोगी परीक्षा एवं निदान पूर्वरूप आदि द्वारा रोग परीक्षा का वर्णन किया है वहां इन तीनों प्रमाणों आप्तोपदेश, प्रत्यक्ष और अनुमान द्वारा इनकी सिद्धि बताई गई है।

"आप्ततश्चोपदेशेन प्रत्यक्षकरणेन च। अनुमानेन च व्याधीन् सम्यग्विद्याद्विचक्षणः"।[33]

प्रत्यक्ष, आप्तोपदेश और युक्ति द्वारा जहां रोग परीक्षा में कठिनाई आती है वहां अनुमान द्वारा विषय स्पष्ट हो जाता है। अतः ऐसे अनेक स्थल देखे गए है जहां अनुमान की सर्वाधिक महत्ता सिद्ध होती है।

अतः यहां रोग परीक्षा रूपी सामान्य परिचय इस प्रकार हैः– (1) रोगी के मुख, त्वचा आदि में उत्पन्न होने वाले अस्वाभाविक रस होते है। उन्हीं के आधार पर रोग एवं दोषों का ज्ञान किया जाता है। इनका ज्ञान रसनेन्द्रियग्राह्य है। किन्तु चिकित्सक इन्हें रसास्वादन करके तो ज्ञान कर नही सकता अतः अनुमान प्रमाण द्वारा ज्ञान किया जाता है। (2) मुख में अम्लता होने से पित्त वृद्धि का ज्ञान। (3) शरीर पर मक्खियां बैठती हों तो माधुर्य का अनुमान। (4) गुदा एवं योनि मार्ग से दूषित रक्त की तरह शुद्ध रक्त भी बहने लग जाता है। अतः ऐसे रक्त को चावल या सत्तू में मिलाकर कुत्तों और कौवों को डालते है। यदि वे खा लें तो शुद्ध एवं नही खायें तो अशुद्ध रक्त का अनुमान किया जाता है। (5) पाचन शक्ति से अग्नि बल का ज्ञान।[34] (6) श्रम शक्ति को देखकर शरीर बल का अनुमान। (7) शब्दादि विषयों के ग्रहण के प्रकार से इन्द्रियों की क्षमता का अनुमान किया जाता है। (8) अयथार्थ एवं मिथ्या ज्ञान से तमोगुण एवं मूढ़ता का अनुमान। (9) रोदन आदि से दीनता का अनुमान। (10) उत्साहित हाव–भाव से प्रसन्नता का। (11) ग्रहण शक्ति से मेघा का अनुमान। (12) रोगी का शीत उष्ण आदि उपचारों में एवं आहार पदार्थों के उपयोग से अर्थात् कैसे आहार पसन्द करता है इसमें उसकी प्रकृति का अनुमान किया जाता है।[35]

इस प्रकार अनेक विषय है जिनको देखकर प्रवृत्ति, प्रकृति, सात्म्यासात्मय, दोष प्रकोपता, वृद्धि एवं क्षीण भाव, बल एवं अग्नि का अनुमान किया जाता है। शरीर के परोक्ष भाव तथा दी गई औषध की प्रवृत्ति भी

Scanned by CamScanner

प्रत्यक्ष नही देख सकते। रोगी द्वारा बताये गए लक्षणों से अनुमान ही किया जाता है। अतः आप्तोपदेश एवं प्रत्यक्ष के साथ अनुमान भी आवश्यक है।

आप्तोपदेश की आयुर्वेद में प्रधानता

यद्यपि दर्शन ग्रन्थों में आप्तोपदेश नामक कोई प्रमाण स्वीकार नही किया तथापि शब्द प्रमाण माना है जो आप्त वाक्यों पर आधारित है। आयुर्वेद में आप्त प्रमाण को सर्वाधिक महत्त्व दिया गया है एवं सभी प्रमाणों में प्रधानता भी बताई है क्योकि प्रत्यक्षादि के परे जो ज्ञान है वह आप्त वचनों द्वारा ही सिद्ध होता है अतः चिकित्सा में इसका विशेष महत्त्व है।

रोगी–रोग परीक्षा में ज्ञान प्राप्त कराने वाले जिन प्रमाणों का उल्लेख चरक विमान स्थान में किया है उसमें प्रथम गणना आप्तोपदेश की है क्योंकि प्रथम आप्त वचनों द्वारा ही ज्ञान होता है तदनन्तर प्रत्यक्ष और अनुमान द्वारा विषय का स्पष्टीकरण किया जाता है। और आप्तपुरूष लोकव्यवहार में विषयों का ज्ञान कराने वाले होते है। उनसे प्राप्त ज्ञान के आधार पर ही हम प्रत्यक्ष में उस ज्ञान को प्रयोग में लाते है।[40] जैसे रोग एवं रोगी के लक्षणों के विषय में विद्वान् उपदेश करते है। उसी के आधार पर हम आये हुए रोगी के लक्षणों को देखकर रोग का नाम ज्ञान करते हैं। यदि प्रथम उपदेश न किया गया होता तो हमें रोग का ज्ञान नही हो सकता था।

चिकित्सा शास्त्र प्रायोगिक विज्ञान है। इसमें आचार्यो द्वारा रोगी रोग के विषय में छात्रों को पूर्व में ज्ञान कराया जाता है। सुश्रुत में योगसूत्रीय अध्याय में प्रत्यक्ष कर्माभ्यास का उल्लेख किया है। इसी के आधार पर हम कार्य क्षेत्र में सफल हो सकते है जब तक आप्तों द्वारा इनका उपदेश नही किया जाता कर्माभ्यास में सफलता नहीं मिलती।[41]

अनेक औषधियां विषाक्त भी होती है उनका ज्ञान, वनस्पतियों के विषप्रभाव का ज्ञान आदि भी आप्त वचन द्वारा ही प्राप्त कर सकते है। किसी स्थान पर जाना, रात्रिगमन आदि से भी आप्तवचन के बाद ही निराकरण किया जाता है। अतः आप्त यथार्थ कहने वाले होने से विषय का संशय दूर हो जाता है जबकि प्रत्यक्ष आदि द्वारा विषय सम्मुख होने पर भी बिना आप्त प्रमाण के संशय बना रहता है। आयुर्वेद चिकित्सा शास्त्र है अतः रोग निवारण तथा स्वस्थ व्यक्ति के स्वास्थय की रक्षार्थ आप्त प्रमाण की प्रधानता सिद्ध होती है।

आप्तोपदेश द्वारा रोग परीक्षा

आप्त पुरूषों एवं गुरू मुख से निम्नलिखित बातों का रोग ज्ञान हेतु विचार करने के लिए चरक विमान स्थान में लिखा है कि – रोग के कारणभूत दोष के प्रकोपक कारणों, रोगी की अवस्था, निदान, प्रकोप का स्थान प्रज्ञापराधादि का ज्ञान, अन्य रोगों से, रोग विशेष की विशेषता, रोग के अधिष्ठान विशेष, प्रकार, रूप, रस, स्पर्श, गन्धादि का ज्ञान, उपद्रव ज्ञान, वृद्धि अथवा क्षय, स्थिति, कारण एंव लक्षण, रोग के परिणाम, नाम, चिकित्सा एवं पथ्य अपथ्यों का ज्ञान पूर्व में आप्तों से ही जाना जाता है।[32] कहने का अर्थ यह है कि विषय का स्पष्ट ज्ञान पूर्व में आप्तों द्वारा ही किया जाता है तत्पश्चात् उन विषयों में सर्वज्ञता आती है। इसीलिए अन्य प्रमाणों की अपेक्षा आयुर्वेद में इसकी प्रधानता देखी जाती है।

युक्ति प्रमाण विचार

चरक में युक्ति की प्रामाणिकता हेतु दो उदाहरण दिये है जिससे युक्ति का अस्तित्व विशेष रूप से सिद्ध हो जाता है।

जलकर्षणबीजर्तुसंयोगात् सस्यसंभवः।
युक्तिषड्धातुसंयोगाद् गर्भाणां संभवस्तथा।।[44]

जिस प्रकार उचित जल, कर्षण (जोती हुई भूमि), बीज एवं ऋतु के संयोग के धान्य की उत्पति हो जाती है उसी प्रकार षड्धातु (पंचमहाभूत एवं आत्मा) के संयोग से गर्भ की उत्त्पत्ति हो जाती है। अतः यदि कोई यह प्रमाण चाहे कि गर्भ की उत्पत्ति कैसे होती है। तव जल, कर्षण, बीज ऋतु के संयोग रूप युक्ति से प्रमाणित किया जाता है। यदि इसमें कोई अन्य प्रमाण की शंका करे तो यहां आप्त वचन को मानना तो अभीष्ट है किन्तु उनको भी किसी युक्ति द्वारा सिद्ध करना होगा। प्रत्यक्ष एवं अनुमान प्रमाण द्वारा यह नही किया जा सकता क्योंकि यहां गर्भाधान भाव का प्रत्यक्ष नहीं होता एवं अनुमान में हेतु एवं व्याप्ति की आवश्यकता होती है उपमान भी यहां गौण है अतः युक्ति द्वारा सिद्ध किया गया है। दूसरा उदाहरण चिकित्सा कर्म के सम्बन्ध में है–

मध्यमन्थकमन्थानसंयोगादग्निसंभवः।
युक्तियुक्ताचतुश्पाद संपद् व्याधिनिबर्हणी।।[45]

अर्थात् चिकित्सा के चतुष्पाद किस प्रकार रोग का विनाश करने में समर्थ है इसके लिए युक्ति दी गई है कि जैसे अरणीरूपी काष्ठ से अग्नि उत्पन्न करने में औखलरूपी मथनी एवं मथने वाला (ऊपर का काष्ठ) तथा मथने की क्रिया से अग्नि की उत्पत्ति हो जाती है उसी प्रकार भिषग् (चिकित्सक), द्रव्य (औषध), उपस्थाता (परिचारक) एवं रोगी इन चारों का संयोग गुणयुक्त होने पर क्रिया करते हुए रोग का विनाश करने में समर्थ होते है।

युक्ति प्रमाण का आयुर्वेद में विशेष उपयोग–

1) पदार्थ एवं तत्त्वों की सिद्धि का ज्ञान तो युक्ति द्वारा किया ही जाता है रोगी रोग परीक्षा, औषध निर्माण आदि में भी युक्ति की ही प्रधानता देखी जाती है।

Scanned by CamScanner

2) विषय की उपादेयता एवं अनावश्यकताओं में युक्ति के आधार पर ही निर्णय किया जाता है।

3) परादि गुणों में युक्ति द्वारा ही समस्त योजना तैयार की जाने से इसका विशेष महत्त्व प्रदर्शित होता है अर्थात् अनेकविध कल्पों में औषध मात्रा निर्माण विधि में योजना आदि युक्ति पर ही आधारित होती है।

4) स्वस्थ व्यक्ति के सभी लक्षणों द्वारा रूग्ण व्यक्ति के लक्षणें से युक्ति द्वारा ही सामंजस्य करते हुए रोग का निर्णय किया जाता है। दोष, धातु, अग्नि, प्रकृति, बल, सत्व आदि या आहार मात्रा एवं शरीर के लिए हिताहित का विचार भी युक्ति द्वारा ही किया जाना सुगम है। अतः आयुर्वेद में जहां अन्य प्रमाणों की अपेक्षा युक्तिपूर्वक विषय का निराकरण किया जाता है वहां युक्ति प्रमाण की ही विशेषता देखी जाती है। बहुत से विषयों में तो युक्ति ही मात्र आधार होती है।

5) पंचकर्मोक्त द्रव्यों के ज्ञान अथवा चिकित्सा चातुर्य भी युक्ति द्वारा ही सिद्ध होता है।

यथा–

"स्मृतिमान् हेतुयुक्तिज्ञो जितात्मा–प्रतिपत्तिमान्।
मात्राकालाश्रया युक्तिः सिद्धिर्युक्तौ प्रतिष्ठिता।
तिष्ठत्युपरि युक्तिज्ञो द्रव्यज्ञानवतां सदा।।"[46]

अतः चिकित्सा, देश, काल, औषध निर्माण में जो योजनाएं बनाई जाती है वे सभी युक्ति पर आधारित होती है। तर्क भाषा के प्रारम्भ में अबोध बालकों को न्याय का ज्ञान कराने हेतु युक्तियों द्वारा विषय समझाने का उल्लेख किया गया है। अतः शास्त्रीय तथा व्यवावहारिक दोनों पक्षों में इसका महत्त्व है।

उपमान प्रमाण निरूपण

किसी प्रसिद्ध वस्तु के साधर्म्य से अप्रसिद्ध वस्तु का ज्ञान प्राप्त करना उपमान या उपमिति है।[47] चवालीस वाद प्रकरण में उपमान का विवरण करते हुए आचार्य चरक कहते है कि

"अथौपम्यम्–औपम्यं नाम यदन्येनान्यस्य
सादृश्यमधिकृत्य प्रकाशनम्। यथा दण्डेन दण्डस्य,
धनुषा धनुस्तंभस्य इष्वासेनाऽरोग्यदस्येति।"[48]

अर्थात् किसी प्रसिद्ध वस्तु के सादृश्य से अप्रसिद्ध वस्तु की समानता को देखकर उसे प्रकट करना उपमान कहलाता हैं। रोग निर्णय हेतु तथा स्वरूप ज्ञान हेतु व्यावहारिक उदाहरण के रूप में प्रयोग किया जाता है।[49] जैसे – दण्ड को देखकर दण्डक रोग का, धनुष सादृश्य से धनुस्तम्भ रोग का, उपमान द्वारा ही ज्ञान किया जाना चरक में बताया है। **"उपमीयते अननेक इति उपमानम्"** इस विग्रह से उपमान शब्द निष्पन्न हुआ है अतः उपमा या सादृश्य के आधार पर जो ज्ञान होता है वह उपमान है।

उपरोक्त लक्षणों में प्रसिद्ध वस्तु के साधर्म्य समानता रूप अप्रसिद्ध वस्तु का ज्ञान कराने में उपमान को ही प्रमाण बताया है।[50] यहां गौ और गवय का उदाहरण दिया है जैसे किसी पुरूष को गवय (नीलगाय) का ज्ञान नही था किन्तु किसी वनवासी द्वारा यह सुनने पर कि गवय गाय के समान ही होता है। जब कभी वह वन में जाता है तब गाय के समान किसी पशु को देखकर उस अतिदेश वाक्य को स्मरण करता है (जो उसने वनवासी से सुना था) कि यह पशु गवय है क्योंकि गाय के समान है। आयुर्वेद में उपमान का प्रसिद्ध वस्तु के साधर्म्य से रोग निर्णय में उपयोग किया जाता है। अतः सभी पक्ष से सादृश्यमूलक ज्ञान ही उपमान है।[51]

उपमान का आयुर्वेद में उपयोग–

आयुर्वेद में उपमान का सादृश्यमूलक ज्ञान करने हेतु ही विशेष महत्त्व दिया है।[52] जहां व्यवहार में प्रसिद्ध वस्तु के साथ में सादृश्य से उपमान द्वारा प्रामाणिकता दिखाई है वहां आयुर्वेद में चिकित्सा हेतु इस प्रमाण का उपयोग करते हुए इसके विशेष महत्त्व को प्रदर्शित किया है। चरक एवं सुश्रुत में ऐसे अनेक उदाहरण दृष्टिगोचर होते है।

(1) सामान्य विशेष प्रकरण में द्रव्य, आहार–विहार एवं शरीर भावों की वृद्धि ह्रास के उदाहरण में, उपमान के साधर्म्य एवं वैधर्म्यमूलक दोनों भेदों का स्पष्ट प्रयोग मिलता है।[53]

(3) सुश्रुत में जहां उपमान का उल्लेख किया है वहां टीकाकार श्री डल्हण ने माष के समान मस्से का, तिल के समान तिलकालक का, विदारीकन्द के समान विदारी रोग का एवं कमलकन्द के सादृश्य से पनसिका रोग का सादृश्य के रूप में वर्णन किया है ऐसा प्रत्येक प्रकरण में दृष्टिगोचर होता हैं।

(4) उपमान के विवरण में चिकित्सक का धर्नुधारी से सादृश्य बतलाते हुए चरक ने लिखा है कि जिस प्रकार अच्छा तीरन्दाज दूर होते हुए लक्ष्य पर भी बाण चलाकर वेध कर देता है उसी प्रकार एक अच्छा चिकित्सक गूढ़ रोग रूपी लक्ष्य को बेधकर चिकित्सा में सफलता प्राप्त कर लेता है। अतः उपमान का प्रत्यक्ष एवं परोक्ष दोनों दृष्टि से चिकित्सा में उपयोग किया गया है। चाहे उसे स्वतन्त्र रूप से प्रमाण स्वीकार न किया हो तथापि महत्त्व की दृष्टि से इसको भी स्वीकारा है।[54]

उक्तविमर्शावलोकन से स्पष्ट हो जाता है कि प्रमाण वह होता है जो वस्तु के प्रति अज्ञान को समाप्त कर उसके यथार्थ स्वरूप का बोध कराये, जिसके द्वारा अभीष्ट और अनिष्ट पदार्थों को जाना जा सके तथा जिसके आधार पर अभीष्ट पदार्थ की प्राप्ति और अनिष्ट पदार्थ के परिहार हेतु प्रवृत्त होकर सफलता प्राप्त की जा सके। ये सभी विशेषताएँ पदार्थ के

Scanned by CamScanner

यथार्थ स्वरूप के निर्णयात्मक ज्ञान में ही विद्यमान है और इसीलिये ऐसा ज्ञान ही प्रमाण है।

न्याय दर्शन मात्र प्रमाण शास्त्र नहीं है, अपितु ज्ञानार्जन की भूमिका में प्रमाणों के साथ ही साथ संशय, दृष्टान्त, सिद्धान्त, अवयव (अनुमान) तर्क और वाद का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है यह बात चरक संहिता में इन तत्त्वों के विवरण से प्रतीत होती है। चरक सहिता में संभाषा परिषद् की चर्चा है उसमें वाद–विवाद के नियमों की चर्चा है, वहाँ वाद–विवाद जय–पराजय के लिऐ नहीं है अपितु विभिन्न जड़ी बूटियों के नये औषधीय गुणों का ज्ञान अर्जित करने और ज्ञान को निरन्तर विकसित करने के लियें है। इस संभाषा परिषद में विभिन्न स्थानों पर कार्यरत वैद्य एकत्रित होकर विभिन्न जड़ी–बूटियों के विभिन्न व्यक्तियों पर देश काल की भिन्नता के अनुसार पड़ने वाले विभिन्न प्रभावों के अपने अनुभवों की चर्चा करते थे और उन दृष्टान्तों को सामने रखकर नये सिद्धान्तों पर अनुसंधान और पूर्वज्ञात सिद्धान्तों का परिष्कार करते थे। चरक संहिता में न्याय के विभिन्न पदार्थों का विवरण तथा संभाषा परिषद का उल्लेख न्याय दर्शन की पदार्थ व्यवस्था के शिक्षा शास्त्रीय महत्त्व की ओर संकेत करता है। यह इस बात की ओर भी संकेत करता है कि प्राचीन भारत में न्याय दर्शन की पदार्थ व्यवस्था का विभिन्न विज्ञानों के क्षेत्र में अध्ययन और अनुसंधान विधि का उपयोग किया जाता था। तथा भारत इसी विधि को अपनाकर बौद्धिक विकास के प्रकर्ष पर विद्यमान था।

इस लिये वात्स्यायन ने अपने भाष्य में आन्वीक्षिकी न्याय विधा का महत्त्व बतलाये हुऐ कहा है कि न्याय विद्या सब विद्याओं का प्रदीप है, समस्त कर्मों का उपाय है पदार्थो के समस्त धर्मों का आश्रय है, यह न्याय विद्या या आन्वीक्षिकी विद्या वहुत ही विस्तृत और सूक्ष्म है। इस महत्वपूर्ण आन्वीक्षिकी विद्या के द्वारा ही भारत विश्व गुरू बना था। आज भारत पुनः वही गौरव हासिल कर सके इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए न्याय दर्शन के इस मूल स्वरूप को समझना आवश्यकहैं।

संदर्भ ग्रंथ :–

1. आयुर्वेदीय पदार्थ दर्शन (वैद्य ताराचन्द शर्मा),नाथ पुस्तक भण्डार, हरियाणा, 1994, पृ. 25।
2. "प्रयोजनं चास्य (आयुर्वेदस्य) स्वास्थस्य स्वास्थ्यरक्षणमातुरस्य विकारप्रशमनं च। – चरक सूत्र 30/24।
3. चरक संहिता (हिन्दी व्याख्या) आचार्य विद्याधर शुक्ल, प्रो. रविदत्त त्रिपाठी, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान दिल्ली, 2005, पृ. 628।
4. आयर्वेदीय शरीर क्रिया विज्ञान (शिवकुमार गौड़) पृ. 4।
5. आहारसम्भवं वस्तु शरीरः। च.सू 28/44।
6. आयुर्वेदीय पदार्थ दर्शन (वैध ताराचन्द शर्मा),नाथ पुस्तक भण्डार, हरियाणा, 1994, पृ. 34।
7. तर्क भाषा (केशव मिश्र प्रणीता) व्याख्या–डॉ. श्रीनिवास शास्त्री, साहित्य भण्डार, मेरठ, द्वादश संस्करण, 2001, पृ. 12।
8. च.सू. 11/17।
9. आयुर्वेदीय पदार्थ दर्शन (वैद्य ताराचन्द शर्मा),नाथ पुस्तक भण्डार, हरियाणा, 1994, पृ. 269।
10. सुश्रुत संहिता– सूत्र स्थान 10/4।
11. चरक विमान, 8/83।
12. पदार्थ विज्ञान (प्रो. रविदत्त त्रिपाठी),चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान दिल्ली, 2017,पृ. 160।
13. च. वि. 4/3।
14. च. सू. 11/17।
15. 'इन्द्रियार्थ–सन्निकर्षजन्यं ज्ञानं प्रत्यक्षं'– न्या. सू. आ.1, आ, 1, सू. 4।
16. च. वि. 4/4।
17. च. सू. 11/20।
18. आयुर्वेदीय पदार्थ दर्शन,(वैद्य ताराचन्द शर्मा),नाथ पुस्तक भण्डार, हरियाणा, 1994, पृ. 289।
19. चरक संहिता (हिन्दी व्याख्या) आचार्य विद्याधर शुक्ल,प्रो. रविदत्त त्रिपाठी, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान दिल्ली, 2005, पृ. 628।
20. आयुर्वेदीय पदार्थ दर्शन,(वैद्य ताराचन्द शर्मा),नाथ पुस्तक भण्डार, हरियाणा, 1994,पृ. 289।
21. च. वि. 4/7।
22. पदार्थ विज्ञान (प्रो. रविदत्त त्रिपाठी),चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान दिल्ली, 2017,पृ. 189।
23. वहीं, पृ. 189।
24. च. वि. 4/9।
25. चरक संहिता (हिन्दी व्याख्या) आचार्य विद्याधर शुक्ल,प्रो. रविदत्त त्रिपाठी, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान दिल्ली, 2005, पृ. 628।
26. आयुर्वेदीय पदार्थ दर्शन,(वैद्य ताराचन्द शर्मा),नाथ पुस्तक भण्डार, हरियाणा, 1994,पृ. 362।
27. पदार्थ विज्ञान (प्रो. रविदत्त त्रिपाठी), चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान दिल्ली, 2017,पृ. 173।
28. आयुर्वेदीय पदार्थ दर्शन,(वैद्य ताराचन्द शर्मा),नाथ पुस्तक भण्डार, हरियाणा, 1994, पृ. 368।
29. वहीं, पृ. 370।
30. च. सू. 11/23।
31. च. सू. 11/24।
32. च. सू. 2/36।
33. "प्रसिद्ध साधर्म्यात्साध्यसाधनमुपामानम्।"– न्या. सू. अ. 2, आ. 1, सू. 6।
34. च. वि. 4/42।
35. पदार्थ विज्ञान (प्रो. रविदत्त त्रिपाठी),चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान दिल्ली, 2017,पृ. 209।
36. चरक संहिता (हिन्दी व्याख्या) आचार्य विद्याधर शुक्ल, प्रो. रविदत्त त्रिपाठी, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान दिल्ली, 2005,पृ. 628।
37. आयुर्वेदीय पदार्थ दर्शन (वैद्य ताराचन्द शर्मा),नाथ पुस्तक भण्डार, हरियाणा, 1994, पृ. 398, 399।
38. पदार्थ विज्ञान (प्रो. रविदत्त त्रिपाठी),चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान दिल्ली, 2017,पृ. 210।
39. वहीं, पृ. 211।
40. आयुर्वेदीय पदार्थ दर्शन,(वैद्य ताराचन्द शर्मा),नाथ पुस्तक भण्डार, हरियाणा, 1994, पृ. 329।

Scanned by CamScanner